सीधा संवाद

आदिवासी समाज, साहित्य और कलाचार

प्रो. सरोज कुमारी

आपकी साहित्यिक आलोचना व स्त्री लेखन व विमर्श पर 15 पुस्तकें प्रकाशित है। नवीनतम प्रकाशित पुस्तक 'साहित्य का स्त्रीवादी पाठ' (2025) है। विभिन्न राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में 50 से अधिक शोधपत्र की प्रस्तुति कर चुकी है। आपको महाश्वेता देवी राष्ट्रीय पुरस्कार-2020, जन मीडिया पुरस्कार-2020, विष्णु प्रभाकर राष्ट्रीय सम्मान -2020 प्राप्त हुआ है।

अध्यापन कार्य,

दिल्ली विश्वविद्यालय।

संपर्क : 8587037978

साहित्य सृजन की प्र∅िया में नये-नये विमर्श का आना स्वाभाविक है। स्त्री विमर्श के बाद दलित विमर्श और अब आदिवासी विमर्श अपने चरम पर है। साहित्य में बड़े स्तर पर आदिवासी तथा गैर-आदिवासी लेखक साहित्य सृजन की प्र∅िया में नये आदिवासी साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। आज विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं पुस्तकों के केंद्र में आदिवासी समाज है। गोष्ठियों के मंचों पर भी आदिवासी समाज बहस का बिंदु बना हुआ है। आदिवासी लेखक तथा गैर आदिवासी लेखक अपने-अपने नजरिए से आदिवासी समाज की परिभाषा गढ़ रहे हैं। नवोदित साहित्यकारों ने अब यह कहना शुरू कर दिया है कि बहुत हो गया स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अब केवल आदिवासी विमर्श। बहुत अच्छा है, कम से कम वर्तमान साहित्यकारों ने इस मुद्दे को प्राथमिकता तो दी चाहे सरकारी योजनाओं में आदिवासियों की समस्याएं तथा उनके समाज और कलाचार को प्रमुखता नहीं दी जा रही हो। यहाa पर एक तथ्य पर विचार कर लेना अनिवार्य है कि कुछ विमर्श शाश्वत होते हैं, वे कभी समाप्त नहीं हो सकते, परिस्थितियों के अनुसार उनकी समस्याओं का रूप बदलता रहता है किंतु समस्याएं बराबर बनी रहती है, दलित विमर्श और स्त्री विमर्श भी वैसे ही हैं।

आदिवासी विमर्श बहुत देरी से साहित्य के केंद्र में आया। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श के बाद अब आदिवासी साहित्य शोधार्थियों और पाठकों की रुचि का विषय बनता जा रहा है। महाश्वेता देवी ने काफी लंबे समय तक इस विषय पर लेखनी चलाई। रमणिका गुप्ता बहुत लंबे अर्से से आदिवासी विमर्श को आगे बढ़ाने का कार्य कर रही थी। विद्वानों का मत है कि आदिवासी साहित्य दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श की तरह नहीं लिखा जा सकता। कारण-लेखक आदिवासी कलाचार से परिचित हुए बिना कुछ भी नहीं लिख सकता क्योंकि आदिवासी आज भी समाज की

आदिवासी समाज के मूलदर्शन को समझकर जो साहित्य लिखा जाए उसे आदिवासी साहित्य माना जाए तो कोई संदेह नहीं। आदिवासी दर्शन ही वह तÖव है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष, समाज और साहित्य से अलग करता है।

मुख्यधारा से दूर है। एक आदिवासी लेखक ही इस संबंध में न्याय कर सकता है। वीर भारत तलवार ने आदिवासी साहित्य को तीन वर्गों में विभाजित करने की पहल की है–आदिवासियों के बारे में लिखा गया साहित्य, आदिवासियों के द्वारा लिखा गया साहित्य और आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर लिखा गया साहित्य।

आदिवासी चिंतक और आलोचक साहित्य में वर्णित वन और आदिवासी जनजातियों के प्रसंग को आदिवासी साहित्य की परिधि से बाहर रखते हैं जैसे 'रामचरितमानस' का शबरी प्रसंग, रेणु के 'मैला आaचल' का संथाल प्रसंग एवं योगेन्द्र नाथ सिन्हा के 'वन लक्ष्मी' आदि को आदिवासी साहित्य नहीं माना जा सकता।[1]

स्त्री विमर्श आदिवासी विमर्श के आधार पर निर्मित है। इसके संबंध में यह तर्क समीचीन होगा कि 'अनुभूति की प्रमाणिकता किसी साहित्य का एकमात्र आधार नहीं हो सकती।' किसी समुदाय की संवेदना के साथ जुड़ना, उसकी समस्याओं और चुनौतियों को उजागर करने के लिए उस समुदाय में पैदा होना आवश्यक नहीं जो लोग आदिवासी समाज में पैदा हुए किंतु दूसरों समुदायों से जुड़ गये तो उनका दर्शन भी प्रभावित होगा। इसमें दो राय नहीं। हाa, आदिवासी समाज के मूलदर्शन को समझकर जो साहित्य लिखा जाए उसे आदिवासी साहित्य माना जाए तो कोई संदेह नहीं। आदिवासी दर्शन ही वह तÖव है जो आदिवासी समाज और साहित्य को शेष, समाज और साहित्य से अलग करता है। 'आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य की मूल शर्त है। इसे बचाना ही आदिवासी साहित्य आंदोलन का मुख्य ध्येय।'[2] आदिवासी साहित्य आदिवासी दर्शन पर आधारित गैर-आदिवासी समुदायों द्वारा किए जा रहे शोषण और आदिवासियों के अस्तित्व के लिए किए जा रहे आंदोलन की प्रतिध्वनि का साहित्य है। यह एक परिवर्तनशील प्रÖिया के प्रति किसी समाज का रचनात्मक हस्तक्षेप है और उनके आत्मनिर्भरता के अधिकार की पहल भी है–

आदिवासी साहित्य-परंपरा की Öाृंखला में तीन तरह का साहित्य मिलता है–

1. पुरखा साहित्य
2. आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा
3. समकालीन आदिवासी लेखन

आदिवासी दर्शन व साहित्य में हजारों वर्षों के मौखिक साहित्य को पुरखा साहित्य कहा गया है। संसार के लगभग हर साहित्य का पूर्व-रूप मौखिक ही रहा है। आदिवासी साहित्य परंपरा में पुरखा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परंपरा विभिन्न आदिवासी समुदायों की भाषा में मौजूद है। इनकी इसी मौखिक परंपरा के माध्यम से आदिवासियों के जीव-दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्यों-विश्वासों आदि को समझा जा सकता है।

वर्तमान में उपलब्ध सामग्री के अनुसार मेन्नस ओड़ेय का 'मनुराज कहानि' नामक मुंडारी उपन्यास पहला आदिवासी उपन्यास है। इसकी रचना 20वीं सदी के दूसरे दशक में की गई। आदिवासी भाषाओं और समाजों से विभिन्न विधाओं का चयन करके आदिवासी लेखकों ने सर्वथा मौलिक लेखन किया है, चाहे वह अपनी मातृभाषा में हो या किसी अन्य भाषा में। आज इन भाषाओं में लिखे गए साहित्य के विभिन्न अनुवाद उपलब्ध हैं जिस पर आधारित बहुत सारी किताबें प्रकाशित हो रही हैं।

समकालीन आदिवासी लेखन अपने पूर्व साहित्य पुरखा साहित्य और आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा है। हिंदी में लेखकों के प्रभाव स्वरूप आदिवासी लेखकों ने लगभग तीन दशक पूर्व से हिंदी में भी लिखना शुरू कर दिया है। इन तीन दशकों में विपुल, गंभीर और आदिवासियों की चिंताओं को केंद्र में रखकर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें सामने आईं। आज आदिवासी लेखन साहित्य की विभिन्न विधाओं में हो रहा है। आदिवासी कविता लेखन में सुशीला सामद का

नाम सबसे पहले आता है किंतु रामदयाल मुंडा से समकालीन हिंदी कविता की शुरुआत मानी जाती है। उनके बाद गेस कुजूर, रोज केरकेÍा, हरि राम मीणा, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, वन्दना टेटे, विजय सिंह मीणा, अनुज लुगुन का नाम आता है। कथा लेखन के क्षेत्र में मंगल सिंह मुंडा, विजय सिंह मीणा तथा हरि राम मीणा का नाम महत्वपूर्ण है। शंकर लाल मीणा, मंगल सिंह मुंडा, रोज केरकेÍा आदि ने कथा साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

वंदना टेटे के शब्दों में–'आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है, जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतन, सभी कुछ सुंदर है। वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है। आदिवासी साहित्य को लोक साहित्य होने, अनगढ़ होने और प्रतिरोध का साहित्य होने की संज्ञा दी जाती है किंतु वंदना टेटे इस बात को खंडन करती है। आदिवासी साहित्य सौंदर्य को समग्रता में देखता है। उनके यहाa मनुष्य जितना सुंदर है। प्रकृति का हर उपादान पशु-पक्षी, नदियाa, पहाड़, झरने, पेड़-फूल सभी महत्वपूर्ण और सौंदर्य से आच्छादित है। आदिवासी साहित्य वेदना, रुदन और प्रतिरोध का साहित्य भर नहीं है अपितु आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है, जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतना, सभी कुछ सुंदर है। वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है।'[3] केदार प्रसाद मीणा ने लिखा है–'आदिवासियों से संबंधित औसत साहित्य वह है, जिसमें इनकी आंतरिक जटिलताएं, कोमल भावनाएं, समाज, संस्कृति, धर्म और भाषा की गहरी परतों का चित्रण देखने को नहीं मिलेगा।'[4] प्रारंभ में आदिवासी साहित्य में जो सामग्री उपलब्ध थी वह सिर्फ आदिवासी समाज का उथला चित्रण कही जा सकती है जिसमें आदिवासी गीत-नृत्य, खान-पान, मांसल देह वाली युवतियों, जंगल, पहाड़, झाड़ियों का चित्रण, त्योहारों का वर्णन भर था। आदिवासी समाज की समस्याओं और चुनौतियों की चर्चा तक नहीं थी। ऐसा साहित्य आदिवासी समाज के कलाचार, धर्म, भाषा के विभिन्न प्रश्नों को या तो उठाता ही नहीं या फिर बहुत हल्के अंदाज में शामिल करता है। आदिवासी समाज को समग्रता में समझा जा सकता है, उनकी भाषा, कलाचार, समस्याओं और चिंताओं को शामिल किया जाना भी आवश्यक है।

'आदिवासी चाहते हैं कि विस्थापन जैसे ज्वलंत समस्याओं के साथ-साथ इन सब मुÍों पर चर्चा हो, ताकि एक तो उनके सच्चे दोस्तों और सच्ची सहानुभूति की सही-सही पहचान हो सके और दूसरी बात आदिवासियों के समाज, उनके साहित्य और उनकी चिंताओं को नहीं समझा गया तो आदिवासी साहित्य की व्यवस्था भी गैर-आदिवासी बुद्धिजीवी नहीं कर सकेंगे।'[5] आदिवासी साहित्य में उन विषयों की चर्चा आवश्यक है जो उनके आंतरिक संघर्ष से जुड़े हैं, उनके यहाa स्त्री-पुरुष संबंधों की संरचना कैसी है? समाज गतिशील प्रÍिया और परंपराओं/रीति-रिवाजों में बदलाव की तहें टटोलना भी इस साहित्य की प्राथमिकता होनी चाहिए। इस दृष्टि से वाहस सोन वणे, राम दयाल मुंडा, निर्मला पुतुल, हरि राम मीणा, अनुज लुगुन आदि का साहित्य इन चिंताओं को केंद्र में रखकर लिखा जा रहा है। इस संबंध में रमेश चन्द मीणा ने अपनी चिंता व्यक्त करते हुए लिखा है–'आदिवासी को समझने में महाश्वेता देवी ने पूरी जिंदगी लगा दी है। आखिर क्या वजह है कि किसान आत्महत्या कर रहे हैं और आदिवासी विस्थापित

आदिवासी दर्शन व साहित्य में हजारों वर्षों के मौखिक साहित्य को पुरखा साहित्य कहा गया है। संसार के लगभग हर साहित्य का पूर्व-रूप मौखिक ही रहा है। आदिवासी साहित्य परंपरा में पुरखा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परंपरा विभिन्न आदिवासी समुदायों की भाषा में मौजूद है। इनकी इसी मौखिक परंपरा के माध्यम से आदिवासियों के जीव-दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्यों-विश्वासों आदि को समझा जा सकता है।

हो रहे हैं। इस विकास को केवल खास आदमियों से प्रेम है। हमारी सरकारें चहुaमुखी विकास के लिए बड़ी–बड़ी परियोजनाओं को ला रही है, मगर उन्हें यह ध्यान नहीं कि इसमें आदिवासियों का जो विनाश हुआ है, उसकी भरपाई कैसे होगी?' 6

आज का आदिवासी साहित्य आदिवासियों की समस्याओं को गंभीरता से ले रहा है और भविष्य के गहरे संकट की ओर इशारा भी कर रहा है। यह तो आदिवासियों की दुर्दम जिजीविषा का परिणाम है कि इतने विषम परिवेश में भी वे अपने अस्तित्व को बचाए हुए हैं, लगातार मुख्यधारा से जुड़ने के लिए प्रयत्नशील है। वाहरु सोनवणे मराठी के बड़े साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी कविता 'स्टेज' में आदिवासी समाज को हाशिए पर रखने के दर्द को इस तरह व्यक्त किया है–

हम स्टेज पर गए ही नहीं
और हमें बुलाया भी नहीं गया
उaगली के इशारे से
हमें अपनी जगह दिखा दी गई
हम वहीं बैठ गए
हमें शाबाशी मिली
और 'वे' मंच पर खड़े होकर
हमारा दुःख हमसे ही कहते रहे
हमारा दुःख हमारा ही रहा
कभी उनका नहीं हो पाया7

यह कविता आदिवासी लेखन के गैर–आदिवासी लेखन से पार्थक्य को भी प्रति ध्वनित करती है। आदिवासी रचनाकार स्वयं अपने समाज, भाषा और कलाचार के बचाव के लिए कटिबद्ध होकर लिख रहे हैं। अपनी अस्मिता को बचाने के लिए वह साहित्य में तरह–तरह के प्रयोग कर अपनी बात रख रहे हैं। महादेव टोप्पो कहते हैं –

आखिर मैं वह क्यों कहलाऊ¡
जो कहलाना चाहता नहीं8

अपनी अस्मिता के प्रश्न को अनुज लुगुन अपनी 'अघोषित उल गुलान' कविता में स्पष्ट कर देना चाहते हैं–

लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उल गुलान में
कट रहे हैं वृक्ष
माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंØीट के जंगल
दांड़ जाए तो कहaा जाएं
कहते जंगल में
या बढ़ते जंगल में9

अनुज लुगुन ने Øांतिकारी आदिवासी कविताओं का सृजन किया है। वे इतिहास, कलाचार, उत्साह, उम्मीद और अधिकारों की मांग को जबरदस्त तरीके से प्रस्तुत करने की हिम्मत रखते हैं। आदिवासी कलाचार के संरक्षण और विकास के लिए वे भारतीय कलाचार और इतिहास से उदाहरण लेकर अपनी बात इस तरह रखते हैं –

मैंने तुम्हें देखा है
अपने परदादा और दादा की
तीरंदाजी में
भाई और पिता की तीरंदाजी में
अपनी माa और बहनों की तीरंदाजी में
हाa एकलव्य! मैंने तुम्हें देखा है
वहाa से आगे
जहाa महाभारत में तुम्हारी कथा समाप्त होती है
हाa किसी द्रोण को अपना गुरु न मानना
वह छल करता है
हमारे गुरुतों हैं
जंगल में विचरते शेर, बाघ, हिरण,
बरहा और वृक्षों की छाल

आदिवासी समाज में प्रकृति सर्वोपरि है। उनके पुरखे ही उनके इष्ट देव व गुरु हैं, मिथक और इतिहास के केंद्र में उनका कलाचार ही सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त निर्मला पुतुल ने भी आदिवासी सभ्यता और कलाचार के संरक्षण को केंद्र में रखकर अनेक प्रकार की कविताओं का सृजन किया है। 'क्या मैं तुम्हारे लिए हूa* कविता स्त्री विमर्श की कविता है। वहीं पूंजीपतियों की नीतियों का खुला विरोध भी करती है। वे कहती हैं–

नहीं चाहिए हमें उनका अहसान
उठा ले जाएं वे अपनी व्यवस्था
ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें
नहीं चाहिए ऐसा बदलाव
नहीं चाहिए!!

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से आदिवासी सबसे अधिक पर्यावरण प्रेमी है, जल, जंगल, जमीन की सुरक्षा उनके जीवन का सर्वोÙाम लक्ष्य है। जंगल में आदिवासियों के प्राण बसते हैं, वहीं उनका जीवन है, वहीं उनकी जीविका भी। आदिवासियों का कलाचार विशेषतः मानवतावादी कलाचार की रही है, फिर उनके साथ अमानवीय व्यवहार क्यों, कहीं झारखंड के कोयला खादानों में वे शोषण का शिकार हो रहे हैं तो कहीं बस्तर में गोलियों का शिकार हो रहे हैं। संवैधनिक अधिकारों के बावजूद वे आज भी अशिक्षा, गरीबी और अन्य समस्याओं से जूझ रहे हैं। आदिवासी साहित्य आज साहित्यिक और राजनीतिक मंचों पर

बड़ी-बड़ी बहसों के केंद्र में है किंतु आदिवासी समाज की वास्तविक चिंताओं से कोसो दूर हैं। सिर्फ साहित्यिक/राजनीतिक मंचों या पत्र-पत्रिकाओं में छाप देने से आदिवासियों का विकास संभव नहीं है।

आदिवासी कवयित्री सतिरा बडाइक की कविताएं आदिवासी साहित्य को बड़ी देन है। उन्होंने नागपुरी और हिंदी में काव्य सृजन किया है। वे अपनी कविता 'सपनों का छोटा नागपुर-दो' में इन्हीं सियासी दाव-पेंचों की ओर इशारा करती हुई लिखती हैं-

झारखंड के सपनों को करने के लिए साकार
जिसने छोड़ा अपना
जमीन-अधिकार
उन्हीं को नक्शे से मिटाने की साजिश
बहुमंजिला इमारतों में
सियासी दाव-पेंच लेन-देन
रिंग रोड और पावर प्लांट के नाम पर
जमीनों की लूट योजनाओं के नाम पर
जमीनों की भूख।[10]

'आजादी के बाद भी भारतीय समाज ने आदिवासियों का शोषण बंद नहीं किया। वे आज भी अपने ही देश की सरकारों के सौतेले रवैये के शिकार हैं। मुख्यधारा का भारतीय समाज और उनकी सरकारें इनका सब कुछ लूटती रही हैं। आदिवासी समुदाय लगातार विस्थापित होते जा रहे हैं। उनकी सामाजिक-कलाचारिक पहचाने नष्ट होती जा रही है, उनके सामाजिक मूल्य उपहास की वस्तु बना दिए जा रहे हैं।'[11] आदिवासी समाज की इन्हीं चिंताओं को आदिवासी साहित्यकारों ने बड़े ही बेबाक अंदाज में अभिव्यक्त किया है। हरि राम मीणा की कविताएं इस दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है। अपने अस्तित्व की लड़ाई में आदिवासी समुदाय भावों को जस का तस उतारने का प्रयास हरि राम मीणा ने किया है। 'रोया नहीं था यक्ष', हाa चाad मेरा है', 'सुबह के इंतजार' में आदि कविता संग्रह भारतीय कलाचार आदि परंपरा में विद्यमान मिथकों से दो-दो हाथ करते हुए आगे बढ़ते हैं। उन्होंने समकालीन आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। उन्होंने आदिवासी समाज और कलाचार पर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाते हुए कार्य किया है। वे उÜार-पूर्व और दक्षिण से अंडमान तक के आदिवासियों की समस्याओं से रुबरु कराते हैं। उनका प्रस्तुतीकरण हिंदी के कवियों से मिलता-जुलता है। उनकी शैली में सादगी है तो ओज भी है। वे अपनी परंपरा और संस्कृति से पूर्व संवेदना रखते हैं, अपने पुरखों को इतिहास में अमर कर देना चाहते हैं—बिरसा मुंडा को इस सम्मान के साथ याद करते हैं—

उसकी आवाज
जंगलों में अभी भी गूaजती है -
मैं केवल देह नहीं
मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूa
पुश्तें और उनके दावे मरते नहीं
मैं भी मर नहीं सकता
मुझे कोई भी
जंगलों में बेदखल नहीं कर सकता
उलगुलान।
उलगुलान॥
उलगुलान॥।

हरि राम मीणा की कविताएं आदिवासी जीवन-दर्शन, इतिहास आदि परंपराओं का सच्चा आईना है। आदिवासी जीवन की विविध गतिविधियों की अभिव्यक्ति वे सहजता से कर पाए हैं। बिरसा मुंडा, शिबु सोरेन का संघर्ष किसी परिचय का मोहताज नहीं, जय पाल सिंह मुंडा का कार्य आदिवासी समाज को बड़ी देन है। केदार प्रसाद मीणा की पुस्तक समाज, साहित्य और राजनीति इस दृष्टि से महत्वपूर्ण पुस्तक साबित होती है। आदिवासी समाज के लिए संघर्षरत शिबु सोरेन का जीवन-दर्शन इसके केंद्र में है-'शिबु सोरेन ऐसा व्यक्तित्व है कि उस पर एक राय बन ही नहीं सकती है। कम से कम ऐसे दौर में तो बिल्कुल भी नहीं जब गरीब आदिवासी खुद अपने कलाचारिक मूल्यों भाषा और संघर्ष पर गर्व न करके किसी तरह अपने जीवन को बचाने में लगा हो, लगातार विस्थापित हो रहा हो और कुछ संपन्न समुदाय के अमीर व पढ़े-लिखे आदिवासी केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हों, खुद आदिवासियों के संसाधन और उनकी महिलाओं की अस्मत लूटकर उन्हीं के हितैषी बने घूम रहे हों।' आदिवासी समाज के विकास की गति को आगे बढ़ाने में ऐसा साहित्य मील का पत्थर साबित हो सकता है। रमणिका गुप्ता ने भी इस संबंध में अपनी चिंता व्यक्त की है। वे लिखती हैं-'*आजादी के बाद भारतीय शासकों ने जंगल को एक मुनाफे की वस्तु बना दिया और सरकार अधिकारियों नेताओं, ठेकेदारों ने मिलकर*

बर्बरतापूर्वक उसे बर्बाद किया। ठेकेदारों द्वारा जंगलों की निर्मम कटाई की प्रतिØिया स्वरूप ही उÙाराखंड में विषकों आंदोलन चला। बिहार–झारखंड में के जंगल काटकर सांगवान और सफेदे ¼युकेलिप्टिस½ के जंगल लगाने का जबरदस्त विरोध हुआ क्योंकि मिश्रित जंगल आदिवासी को रोजगार, पानी और वर्षा देता है।'[14] आदिवासी पानी के स्त्रोतों के साथ–साथ जमीन को कटाव से भी बचाता है। युकेलिप्टिस ¼सफेदे½ के जंगल पानी के स्रोतों को समाप्त कर देते हैं। आदिवासी हर तरफ से जंगल और पहाड़ की रक्षा करता है। फिर बड़े करोड़पति की राजनीति का शिकार होकर जेल चला जाता है। आवश्यकता है आदिवासियों को इस सबसे बचाने की, उन्हें शिक्षित करने की, जागरूक करने की जिससे वे सम्मान का जीवन जी सकें। इन्हीं सब समस्याओं के परिणामस्वरूप आदिवासियों ने देश के विभिन्न भागों में अनेक अभियान चलाए। इनमें से अधिकांश आंदोलन विस्थापन या भूमि अधिग्रहण, साहूकारों एवं जमींदारों द्वारा कानूनों का अपने फायदे के लिए दुरुपयोग करने से उत्पन्न असंतोष में पैदा हुए जिस भूमि पर आदिवासियों का ही कब्जा था वह धीरे–धीरे अन्य लोगों के हाथ में चली गई। साहूकारों व जमींदारों द्वारा इनका शोषण किया जाने लगा। सीधे–सादे आदिवासी गैर–आदिवासी समुदाय की कठपुतली बन गए। सरकार के द्वारा कानून तो बनाए गए किंतु

।।ई पत्रिका पढ़ना, आसान भी है और सुविधाजनक भी।।

इनका उल्लंघन करने पर कठोर प्रशासनिक नियमों का अभाव ही रहा।

रमणिका गुप्ता ने झारखंड के आदिवासियों के संघर्ष के संबंध में लिखा है–'झारखण्ड के ग्रामीण गरीब जिनमें अधिकतर आदिवासी एवं दलित हैं, बड़े पैमाने पर अपनी आजीविका, मजदूरी से अर्जित करते हैं। वे बधुआ मजदूरी करते हैं। उन्हें न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिली। छोटे किसान भी मजदूरी करते हैं। यहाa पर कृषि के पास रोज़गार प्रदान करने की क्षमता बहुत कम है। सरकारी योजनाओं में कुछ काम इन्हें मिल जाता है लेकिन भ्रष्टाचार की वजह से वास्तव में योजना में 'आकलित श्रम दिवस' से बहुत कम रोजगार गरीबों को मिलता है। ऐसे लोगों को रोजी की तलाश में बड़े पैमाने पर पलायन करना पड़ता है।[15] यहीं से इस समुदाय का शोषण शुरू होता है। ये लोग रोजी–रोटी की तलाश में भटकते हैं, शिक्षा से वंचित हो जाते हैं।

समकालीन आदिवासी कविताओं में आदिवासियों के इसी दर्द को आवाज़ दी गई है। वास्तव में आदिवासी साहित्य सृजनात्मक की प्रतिध्वनि है। अपने कलाचार, भाषा और अस्मिता के बचाव के लिए किया गया सार्थक प्रयास है, जिसमें विद्रोह नहीं बेचैनी है, Øोध नहीं अफसोस है। मिथक और यथार्थ के बीच की मजबूत कड़ी है। इस लेखन में शत–प्रतिशत मौलिकता है। अपनी भाषा और कलाचार के संरक्षण के प्रति कटिबद्ध पहल है। आदिवासी साहित्य को विश्व पटल पर अलग पहचान दिलाने के प्रयास विभिन्न स्तरों पर हो रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. आदिवासी चिंतन की भूमिका, गंगा सहाय मीणा, पृ. 42
2. आदिवासी चिन्तन की भूमिका, गंगा सहाय मीणा, पृ. 42
3. आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, वंदना टेटे पृ. 9
4. केदार प्रसाद मीणा का लेख 'सृजन की कसौटी', जनसÙा 10 मार्च 2013
5. केदार प्रसाद मीणा का लेख 'सृजन की कसौटी', जनसÙा 10 मार्च 2013
6. रमेश चन्द मीणा 'विकास का रुख' लेख, जनसÙा श्वपन. 17
7. लोकप्रिय आदिवासी कविताएं, पृ. 50
8. कलम से तीर होने दो, पृ. 149
9. लोकप्रिय आदिवासी कविताएं, पृ. 172
10.नन्हें सपनों का सुख, पृ. 22
11. आदिवास समाज, साहित्य और राजनीति, भूमिका, केदार प्रसाद मीणा
12. आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, भूमिका, केदार प्रसाद मीणा
13. आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, भूमिका, केदार प्रसाद मीणा
14. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 12
15. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 127

डिजिटल पढ़ना-लिखना आज की जरूरत है, जो सस्ता, सरल व सुगम है तथा यह त्वरित गति से प्रेषित होता है।